◆ टिप्पणी ◆

लघुकथा में गढ़ंत और पुरस्कृत लघुकथाएँ

सुकेश साहनी

पाठकों, लेखकों के बीच निरंतर बढ़ती लोकप्रियता के बीच 'कथादेश अखिल भारतीय लघुकथा प्रतियोगिता-13' का आयोजन संपन्न हो गया है और चौदहवें आयोजन (लघुकथा प्रतियोगिता) की घोषणा की जा चुकी है. कोविड की दूसरी लहर के कारण परिणाम घोषित करने में विलम्ब हुआ. उन सभी प्रतिभागियों के आभारी हैं, जिन्होंने धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा की और अपनी रचनाएँ अन्यत्र उपयोग हेतु नहीं भेजीं. प्रसन्नता की बात है कि लघुकथा-जगत में 'कथादेश मासिक' को बहुत सम्मान प्राप्त है, इसमें लघुकथा प्रकाशित होने पर लेखक इस उपलब्धि को गर्व के साथ प्रस्तुत करता है. जनवरी-जून 2021 के लघुकथा कलश, आलेख विशेषांक-2 (सम्पादक-योगराज प्रभाकर) में डॉ. नितिन सेठी ने 'लघुकथा के विकास में कथादेश पत्रिका का योगदान' विषयक विस्तृत आलेख प्रस्तुत किया है, जो इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि दूर-दराज रहने वाले उन लेखकों/पाठकों को भी इस प्रतियोगिता की जानकारी हुई है, जिन तक किन्हीं कारणों से कथादेश पत्रिका नहीं पहुँच पाती है.

लघुकथा प्रतियोगिता से जुड़ रहे नए पाठकों के लिए यह जानकारी बहुत जरूरी लगती है कि प्रतियोगिता क्रमांक एक से ग्यारह तक की सभी पुरस्कृत लघुकथाएँ 'कथादेश-पुरस्कृत लघुकथाएँ' के रूप में प्रकाशित हैं, जिसे नयी किताब प्रकाशन, प्रकाशित किया है. इस संग्रह के महत्त्व को इसी से समझा जा सकता है कि विभिन्न स्तरों पर आयोजित हो रही कुछ लघुकथा प्रतियोगिताओं में आयोजकों ने इस पुस्तक का चयन पुरस्कार हेतु किया है. एक साथ इतनी सशक्त, पुरस्कृत लघुकथाओं का यह पहला संग्रह है, जिसमें कथाकारों, निर्णायकों और सम्पादक कथादेश का श्रम निहित है. यह पुस्तक लघुकथा में रुचि रखने वाले हर लेखक, पाठक के पुस्तकालय में होनी ही चाहिए.

लघुकथा प्रतियोगिता-1 से 13 तक निर्णायक मंडल में मैनेजर पाण्डे, सुभाष पन्त, महेश कटारे, विभांशु दिव्याल, सुरेश उनियाल, हृषीकेश सुलभ, राजकुमार गौतम, सत्यनारायण, भालचंद्र जोशी, आनंद हर्षुल, योगेंद्र आहूजा, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', श्याम सुन्दर अग्रवाल, देवेंद्र, श्याम सुन्दर 'दीप्ति', जितेंद्र रघुवंशी, गौतम सान्याल, जय प्रकाश, प्रियम अंकित, हरिनारायण एवं सुकेश साहनी शामिल रहे.

लघुकथा प्रतियोगिता-13 के लिए लगभग चार सौ लेखकों ने ई-मेल से रचनाएँ भेजीं, करीब डेढ़ सौ लेखकों द्वारा डाक से भेजी गयीं. प्रत्येक रचनाकार से नियमानुसार अधिकतम तीन लघुकथाओं की अपेक्षा की गई थी, उसी के अनुसार अधिकतर लघुकथाएँ प्राप्त हुईं. किसी एक रचनाकार की प्रथम तीन से अधिक रचनाओं पर विचार नहीं किया गया. इस प्रकार देखा जाए, तो सदैव की भाँति बहुत ही कम लघुकथाओं को निर्णायकों के पास भेजने हेतु उपयुक्त पाया गया. सुखद पहलू यह रहा कि गत वर्ष की भाँति नवोदितों के अलावा कई वरिष्ठ कथाकारों ने प्रतिभागकर आयोजन की गरिमा बढ़ाई.

प्राथमिक चयन में ही बड़ी मात्रा में लघुकथाओं के बाहर हो जाने के कारणों से अवगत कराने का विनम्र प्रयास पहले भी किया जाता रहा है. इस विषय पर आगे टिप्पणी से पहले 'कथा समाख्या-6 : कहानी में गढ़ंत' का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है. 'कथादेश' और 'छत्तीसगढ़ फिल्म एन्ड विजुअल आर्ट सोसाइटी' के संयुक्त तत्त्वावधान में कथा समाख्या के छठे आयोजन में 29 फरवरी से 2 मार्च तक 'कहानी में गढ़ंत' विषय पर तीन सत्रों में गंभीर चर्चा और विमर्श में प्रतिभाग का अवसर मिला. बरेली सत्र की शुरुआत में सुभाष मिश्र ने 'कहानी में गढ़ंत' विषय पर टिप्पणी करते हुए जो कहा, उसका एक अंश यहाँ प्रस्तुत है–

यूँ तो आधुनिक कहानी जीवन की वास्तविकता को आख्यान में ढालकर पेश करने यानी गढ़ने की ही कला है, लेकिन कहानी का मूल चारित्रिक लक्षण है यथार्थ की विश्वसनीयता और वृत्तांत की स्वाभाविकता. आख्यान के रूप में उसे गढ़ने का अर्थ है– उसकी स्वाभाविकता और विश्वसनीयता को बनाये रखते हुए जीवन की विडंबनाओं की पहचान और प्रस्तुति. मगर कहानी गढ़ने के प्रयत्न में यदि कहानीकार वृत्तांत के बजाय यथार्थ को ही मनमाने ढंग से गढ़ने लगे तो यथार्थ की विश्वसनीयता भंग होती है. कहानीकार की महत्त्वाकांक्षा, चमत्कारप्रियता और उसकी वैचारिकता का दबाव आदि सृजन प्रक्रिया को नियंत्रित करने लगे तो कहानी स्वाभाविकता खोकर 'गढ़ंत' में तब्दील होने लगती है, यथार्थ का आभास देने वाली एक कृत्रिम आख्यानात्मक संरचना. दरअसल इस पूरी प्रक्रिया के केंद्र में कहानीकार आ

गया है और कहानी हाशिये पर चली गई है. कहानीकारों में आख्यान को गढ़ने की जगह यथार्थ को ही नियंत्रित या 'मैनिपुलेट' करने की प्रवृत्ति बढ़ी है...

('कहानी में गढ़ंत', कथादेश, जनवरी 2021, पृष्ठ 75)

'कहानी में गढ़ंत' विषयक इस त्रिदिवसीय आयोजन में प्रतिभाग करते हुए 'लघुकथा' से अतिरिक्त जुड़ाव के चलते नेपथ्य में कहीं 'लघुकथा में गढ़ंत' विषय पर भी विचार मंथन चलता रहा. पीलीभीत से बरेली लौटने पर लघुकथा प्रतियोगिता हेतु मेल से प्राप्त कुछ लघुकथाओं से गुजरने का अवसर मिला. उपर्युक्त टिप्पणी को यहाँ उद्धृत करने का उद्देश्य भी यही है कि जिन खतरों की ओर इस टिप्पणी में सचेत किया गया है, वे कहानी की तुलना में लघुकथा में कई गुना अधिक हैं.

वर्तमान में लघुकथा लेखन में सक्रिय लेखकों की संख्या बहुत अधिक है. कभी-कभी है लगता है, आजकल लोग लेखन की शुरुआत लघुकथा से ही करते हैं, जबकि पहले कविता से हुआ करती थी. इसे आकारगत लघुता के कारण तत्काल सोशल मीडिया पर पोस्ट कर वाह-वाही लूटी जा सकती है, लाइक या वाह-वाह करने वालों में अधिकतर ऐसे मित्र होते हैं, जो साहित्य की समझ नहीं रखते, केवल औपचारिकता निभाते हुए टिप्पणी कर देते हैं. साहित्य-जगत में कुछ ऐसे लेखक भी हैं, जिनकी निगाह में लघुकथा का आज भी कोई वजूद नहीं है, वे अपनी लघुकथा को कहानी के तौर पर ही छपवाना पसंद करते हैं. उनकी इस धारणा के पीछे,कहीं न कहीं लघुकथा में हो रहा सतही लेखन भी जिम्मेवार है. ऐसा भी नहीं है कि सोशल मीडिया से लेखन की शुरुआत करने वालों में प्रतिभा नहीं हैं, अनेक लेखकों ने इस प्लेटफार्म पर ही लिखना शुरू किया और आज प्रिंट तथा सोशल मीडिया में अच्छे लघुकथा लेखक के रूप में जाने जाते हैं, पर ऐसे कथाकार गिने- चुने ही हैं. कथादेश प्रतियोगिता के पिछले तेरह आयोजनों में कुल प्राप्त रचनाओं और निर्णायकों के पास भेजी गईं लघुकथाओं के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस विधा में उत्कृष्ट लेखन सीमित मात्रा में ही हो रहा है. प्रतियोगिता-13 में कुल प्राप्त लघुकथाओं में से केवल 2.50 प्रतिशत लघुकथाएँ ही अंतिम चक्र तक पहुँचीं.

लघुकथा में 'गढ़ंत' की दृष्टि से आकारगत लघुकथा ही इसके लिए अभिशाप बनी हुई है, निम्न कारणों से अधिकतर लघुकथाएँ अपना प्रभाव नहीं छोड़ पायीं और प्रथम चरण में ही बाहर हो गयीं–

एक– सोशल मीडिया के विभिन्न समूहों में विषय/शीर्षक/चित्र देकर लघुकथाएँ आमंत्रित करने का चलन है. इस बार तो राजस्थान पत्रिका ने विषय (आखिरी रात, खोई हुई चाबी, पिछली गली, कॉलेज का आखिरी दिन, बड़ा पार्सल, रेलगाड़ी की खिड़की) देकर लघुकथाओं के वीडिओ आमंत्रित किये थे. इस प्रकार के प्रायोजित और समयबद्ध लेखन में प्रतिभाग करनेवाला लेखक (अपवादस्वरूप कुछ अति प्रतिभाशाली कथाकारों को छोड़कर) बिना सृजन-प्रक्रिया से गुजरे कैसे स्तरीय रच सकता है? वह दिये गये विषय के इर्द -गिर्द मनगढ़ंत(फेब्रिकेटेड) ताने-बाने बुनेगा, जिससे यथार्थ की विश्वसनीयता प्रभावित होगी. ऐसी बेजान रचनाएँ बहुतायत में दिखाई दीं.

दो– लघुकथा के बारे में यही भ्रान्ति व्याप्त है कि इसका अंत (जो यहाँ पंच लाइन के रूप में पॉपुलर है) चमत्कारी/ विस्फोटक चौंकाने वाला धारदार होना ही चाहिए, इस भ्रान्ति के चलते हो यह रहा है कि कथ्य की आवश्यकता के विपरीत वास्तविकता से परे, कल्पना के बल पर धमाकेदार अंत 'गढ़' दिया जाता है, जबकि यहाँ अभिप्राय यह है कि अंत में कथ्य पाठक के सामने इस रूप में प्रकट हो कि पूरी कथा के मायने और उद्देश्य एकदम सम्प्रेषित हो जायें.

तीन– समसामयिक विषयों पर अपने वैचारिक एजेंडे को स्थापित करने के लिए आकारगत लघुता के चलते लघुकथा में अभिव्यक्ति काफी सुविधाजनक है, चट-पट लिखा और पोस्ट/प्रकाशित कर दिया. ऐसी रचनाओं (?) की आयु पानी के बुलबुलों के समान होती है. देश-विदेश में घट रही घटनाओं पर तात्कालिक प्रतिक्रियास्वरूप इनका जन्म होता है, इनके माध्यम से अपने विचार प्रतिपादित करने के लिए जो पात्र गढ़े जाते हैं, वो लेखक के हाथों की कठपुतली होते हैं और उसी के द्वारा दिखाए रास्ते पर चलते हैं.

चार– इधर लघुकथा में प्रयोग का चलन बढ़ा है. यदि जीवन का यथार्थ जटिल है और कथ्य को सम्प्रेषित करने में 'प्रयोग' सहायक है, तो उसका स्वागत होना चाहिए, ऐसी लघुकथाएँ प्रभावित भी करती हैं. वर्तमान में विद्वत्ता दर्शाने के लिए अथवा सायास जो प्रयोग हो रहे हैं, वे निराश करते हैं, जब कथ्य को सीधे-सरल अंदाज में बेहतर अभिव्यक्ति मिल सकती है, तो ऐसे प्रयोग की क्या आवश्यकता जो उलटे लघुकथा को इस कदर जटिल बना दे कि सम्प्रेषण का संकट उत्पन्न हो जाए.

पाँच– इस विषय पर पहले भी ध्यान आकृष्ट किया गया है, एक ही कथ्य को दोहराती अनेक लघुकथाएँ प्राप्त होती हैं, जिनके मौलिक होने पर ही प्रश्नचिह्न लग जाता है. कुछ तो विश्व प्रसिद्ध लेखकों की कहानियों का सार लगती हैं, कुछ अपने देश के लेखकों की प्रसिद्ध लघुकथाओं में मामूली फेर-बदल कर गढ़ ली जाती हैं. कहना न होगा कि कुछ लघुकथाएँ संयोगवश भी इस श्रेणी में आ जाती हैं. वर्तमान में 'ऊँचाई' लघुकथा (रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु') की पुनः चोरी चर्चा में है. ऐसी रचनाएँ प्राथमिक चयन में ही बाहर हो जाती हैं.

छह– कुछ लघुकथाओं (?) में यथार्थ के नाम पर सिर्फ और सिर्फ घटनाएँ होती हैं, इनमें किसी चैनल या अखबार की खबर से ऊपर कुछ नहीं होता. कोविड काल से जुड़ी अधिकतर रचनाएँ(घटनाएँ) इसी प्रकार की पाई गईं, इनमें घटना को कथा बनाने का कोई प्रयास नहीं दिखाई दिया. कुछ चुटकुलेनुमा कथाएँ भी प्राप्त हुईं, यह खतरा भी इस विधा पर पुनः मँडराने लगा है. दो

तीन पंक्तियों वाली रचनाएँ भी प्राप्त हुईं, जिहोंने बहुत निराश किया. ऐसे रचनाकारों को रमेश बतरा की इस कथन को समझने का प्रयास करना चाहिए– "किसी भी बीज का छोटा पौधा लघुकथा नहीं. लघुकथा के तुलना अगर पौधों से की जाए, तो लघुकथा भी ठीक वैसे ही पौधों में शुमार होती है , जो प्राकृतिक रूप से मूलतः होते ही छोटे हैं और उनका छोटापन ही उनका आकर्षण भी होता है और भव्यता भी."

प्रतियोगिता हेतु प्राप्त लघुकथाओं में से कुल 29 लघुकथाओं का चयन निर्णायकों के पास भेजने हेतु किया जा सका. निर्णायकों (कथाकार हृषीकेश सुलभ, आलोचक प्रियम अंकित और कथाकार सुकेश साहनी) द्वारा दिये गये अंकों के आधार पर प्रथम 10 पुरस्कृत लघुकथाएँ निम्न हैं–

(1) सीक्रेट पार्टनर (मीनू खरे), (2) अपना अपना चाँद (चाँदनी समर), (3) गुमशुदा जिंदगी (मुकुल जोशी), (4) वचन (पूरन सिंह), (5) नृशंस (अश्विनी कुमार आलोक), (6) इंटरव्यू (प्रदीप तिवारी 'धवल'), (7) इस प्यार को क्या नाम दूँ (संध्या तिवारी), (8) नेमप्लेट (सुधा थपलियाल), (9) इनटोलरेंस (दिव्या शर्मा), (10) डाकू (जयमाला)

कथादेश परिवार और निर्णायकों की ओर से पुरस्कृत सभी लघुकथा लेखकों को हार्दिक बधाई!

शेष चयनित लघुकथाओं का विवरण निम्नानुसार है–

एक शहर की दंतकथा (महेश शर्मा), माटी (अनूप मणि त्रिपाठी), थाली (पूर्णिमा पांडे), किस्सा-ए-बेर-और-बिरयानी (मार्टिन जॉन), संवेदनाओं के स्वर (सीमा वर्मा), यथार्थ (सीमा प्रियदर्शिनी सहाय), अम्मा जी (कोमल वाधवानी 'प्रेरणा'), छाता (सुरेश बाबू मिश्रा), आँचल की छाँव (मधु जैन), क्या यही प्यार है (अनिता ललित), बीज (महावीर राजी), जुगत (भगवान वैद्य 'प्रखर'), आकलन (विनीता राहुरीकर), मिलन (हरभगवान चावला), गेम (ज्योत्सना सिंह), बुर्का (राकेश आनंद), अपने पुराने घर में आखिरी दिन (अर्चना पैन्यूली), पीछे पगहा (अनीता रश्मि), निशान (टेकचन्द)

अंतिम चक्र तक पहुँची लघुकथाओं को कथादेश के सामान्य अंक में प्रकाशित किया जाता रहा है. जाहिर सी बात है कि इसमें समय लगता है, धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी पड़ती है. इस बार तो कोविड के कारण वैसे भी बहुत विलम्ब हो गया है, इस स्थिति में जो लेखक इसमें रुचि न रखते हों और अपनी रचना अन्यत्र छपवाना चाहते हों, वे कथादेश को सूचित करते हुए अपनी रचना अन्यत्र भेज सकते हैं. उनकी रचना प्रतीक्षा सूची से बाहर कर दी जाएगी.

कथा समाख्या-6 के दूसरे सत्र में 'कहानी में गढ़ंत' को लेकर उदय प्रकाश, प्रियंवद. मुक्तिबोध और भुवनेश्वर की चर्चित कहानियों की पड़ताल की गई थी. 'गढ़ंत' को लेकर सामने आए सवालों पर 'कहानी के हित' को लेकर रचनाकारों ने पूरी ईमानदारी से अपने वक्तव्य प्रस्तुत किए थे. उद्देश्य वहाँ भी कहानी के मूल ढाँचे पर मँडराते खतरे के प्रति सचेत करना था. यहाँ भी यह स्पष्ट करना है कि सभी पुरस्कृत लघुकथाएँ स्वागत योग्य हैं. अपनी खूबियों के कारण ही इनका चयन हुआ है. इन रचनाओं पर चर्चा का उद्देश्य लघुकथा के विकास के लिए बेहतर जमीन तैयार करना होता है, न कि रचना की कमजोरियाँ गिनाना. विमर्श के इस दोतरफा आदान-प्रदान से निर्णायकों समेत सभी को कुछ सीखने को मिलता है. निर्णायकों से बड़ा तो आम पाठक होता है. कथादेश के स्तम्भ 'अनुगूँज' में पाठक निर्णायकों के निर्णय पर खुलकर अपना फैसला सुनाते हैं.

इस बार पूरन सिंह और जय माला को छोड़कर आठ कथाकार पहली बार कथादेश प्रतियोगिता में पुरस्कृत हो रहे हैं. पिछले तेरह वर्षों में इस प्रतियोगिता के माध्यम से अनेक नए कथाकारों ने लघुकथा में अपनी पहचान बनायी है.

सीक्रेट पार्टनर (मीनू खरे) निर्णायकों के सम्मलित अंकों के आधार पर प्रथम रही. मीनू खरे ने बच्चों में यौन-शोषण जैसे नाजुक विषय पर उत्कृष्ट लघुकथा रची है. पहली पंक्ति से ही कथा पाठक को अपने साथ बहा ले जाती है और अंत में आकर पाठक को सचेत ही नहीं करती, देर तक बाँधे रखती है. रचना जीवन से पूरी तरह जुड़ी होने के कारण उस 'गढ़ंत' से मुक्त है, जिसकी चर्चा ऊपर करते आये हैं. लघुकथा का शिल्प कथ्य के अनुरूप है, पहला अवतरण विवरणात्मक है, उसके बाद संवाद के माध्यम से रचना पाठक के सामने खुलती जाती है. रचना का प्रवाह कहीं बाधित नहीं हुआ, इसे लेखिका का रचना-कौशल कहा जाएगा. चित्रा की बेटी मून का कथा में प्रवेश और फिर मम्मी के साथ संवाद से जुड़ जाना बहुत ही स्वाभाविक है. लघुकथा 'बड़ों' को भी कहीं न कहीं अपने गिरेहबान में झाँकने को विवश करती है. अंतिम भाग देखें–

"अच्छा! ये सीक्रेट पार्टनर होता कौन है?"

"जिसके साथ आप अकेले में बिना डरे चले जाते हो. जो आपकी बॉडी में कहीं पर भी टच करे, तो आप करने देते हो. आप रोते नहीं, ना ही किसी को बताते हो."

बेहद संशंकित हो चुकी चित्रा ने पूछा, "क्या तुम्हारा भी कोई सीक्रेट पार्टनर है मून?"

"वो तो सबका होता है!"

चित्रा धैर्य खो रही थी, "कौन है तुम्हारा सीक्रेट पार्टनर मून?"

"सीक्रेट पार्टनर का नाम सीक्रेट रखते हैं मम्मी, नहीं तो पापा की डेथ हो जाती है!" मून ने समझाते हुए कहा.

जब हम कथा में अपने जीवन के अनुभवों/जानकारियों का समावेश उपयुक्त स्थान पर करते हैं, तो वो उसके साथ घुल मिल जाते हैं और रचना बिल्कुल विश्वसनीय बन पड़ती है. पिछले दिनों पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक ऐसा गिरोह सक्रिय था, जो छोटे बच्चों से, उनके पिता की मृत्यु का डर दिखलाकर, घर से जेवरों की चोरी करवाता था. लघुकथा के फॉर्मेट को लेकर मीनू खरे की दृष्टि बहुत साफ है, जबकि इस विधा में उनका लेखन बहुत अधिक नहीं है. इस लघुकथा में भी उन्होंने शब्दों का इस्तेमाल जरूरत के हिसाब से किया है. मुझे लगता

है लघुकथा में अंतिम पंक्ति की कोई आवश्यकता नहीं है. विश्वास है कि पिछले वर्षों में कथादेश प्रतियोगिता में प्रथम आई दूसरी लघुकथाओं की भांति 'सीक्रेट पार्टनर' भी लघुकथा-जगत की उत्कृष्ट लघुकथाओं में गिनी जाएगी.

दूसरे स्थान के लिए पुरस्कृत चाँदनी समर की लघुकथा 'अपना अपना चाँद' देश की आबादी के एक बड़े वर्ग की दुर्दशा पर फोकस करते हुए शासक वर्ग को आईना दिखाने में सफल रही है. लघुकथा में कुल तीन पात्र हैं– (एक) झोपड़पट्टी में रहने वाला बच्चा 'विकास' (दूसरा) बंगले में रहने वाला बच्चा 'स्वप्न' (तीसरा) बँगले का चौकीदार/वाचमैन. बच्चों के प्रतीकात्मक नामकरण से लघुकथा का प्रभाव काफी बढ़ गया है. लेखिका ने बहुत ही कुशलता से इन दोनों वर्गों के यथार्थ को बहुत ही रोचक और मार्मिक अंदाज में लघुकथा में पेश कर दिया है. शब्दों का चयन लघुकथा हेतु बहुत ही उपयुक्त. अमीर बच्चे के लिए प्रयोग किये गए शब्द-पैरों में जूते-मौजे, आँखों में सम्पन्नता की झलक और चेहरे पर थोड़ा- सा क्रोध. गरीब बच्चे के लिए-फटे कपड़े, नंगे पाँव, आँखों में दरिद्रता. रचना में संवाद इतने जीवंत और सच्चे हैं कि यदि पात्रों का नाम विकास और स्वप्न न होकर कुछ और भी होता, तो रचना अपने उद्देश्य में खरी उतरती. कैसी विडंबना है कि विकास झोपड़पट्टी में रहता है और पूरी रोटी (पूरा चाँद) के स्वप्न देखता है, जो उसे नसीब नहीं क्योंकि माँ आधी रोटी (आधा चाँद) छुटकी को दे देती है, जबकि स्वप्न को रोटी पसंद ही नहीं , उसे डर है कि वह खा- खाकर मोटा हो जाएगा. स्वप्न विकास को बताता है कि वह घर से छिपकर भाग आया है, क्योंकि माँ दिन-रात खाना खिलाने के पीछे पड़ी रहती है, भला कोई कितना खा सकता है.

"अच्छा! तुम्हें बहुत खाने को मिलता है?" विकास चकित होकर पूछता है.

"हाँ, बहुत –ब्रेड, बटर, पिज्जा, पास्ता, मिल्क, फ्रूट, चिकन, बिरयानी..."

विकास आश्चर्य से उसका मुँह ताक रहा था. कुछ न समझकर उसने सीधे पूछा, "रोटी मिलती है क्या?"

"रोटी? हाँ. मगर मैं रोटी नहीं खाता. मुझे पसंद नहीं."

"क्या!!!" विकास की आँखें फटी की फटी रह गयीं.

स्वप्न अपनी धुन में बोलता जाता है, पर विकास का ध्यान तो रोटी पर अटका था, सुबह से एक भी नहीं मिली थी. स्वप्न को बड़े होकर चाँद पर जाना है, जबकि विकास को उसमें सिर्फ और सिर्फ रोटी दिखती है.

कथा का अंत में बँगले का चौकीदार बाहर आता है और स्वप्न को कहता है कि आप यहाँ बैठे हैं बाबा, मैडम जी कब से आपको ढूँढ रही हैं. स्वप्न विकास को अपने साथ चलने को कहता है, तो चौकीदार उसे टोक देता है और बताता है कि यह आपके साथ नहीं चल सकता, आप दोनों के रास्ते अलग हैं.

गरीबी हटाओ के नारे हम बचपन से सुनते आ रहे हैं, शासन द्वारा इसके लिए उठाये गये कदमों का लाभ क्या ग्रास रूट तक पहुँच रहा है? अमीर व्यक्तियों के और अमीर होते जाने तथा गरीबों के और गरीब या एक ही जगह पर कदमताल की स्थिति क्यों बनी हुई है? स्वप्न उसी रास्ते से आलीशान बँगले की ओर लौट जाएगा, पर विकास को 'विकास के नाम पर' वो रास्ता कब मिलेगा, जो उसे भी अपने 'घर' की ओर ले जाएगा और उसे चाँद में रोटी तलाशनी नहीं पड़ेगी.

निर्णायकों के अंकों के आधार पर मुकुल जोशी की लघुकथा 'गुमशुदा जिंदगी' तीसरे स्थान पर रही. लघुकथा के शास्त्रीय पक्ष को लेकर माथापच्ची करने वालों के लिए यह रचना काबिलेगौर है, लघुकथा का समापन वर्णनात्मक है. इसके समापन के साथ लेखक ने कोई छेड़-छाड़ नहीं की. अंत में यदि लेखक अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ाते हुए राजू के पापा से कोई चमत्कार पूर्ण 'एक्शन' करवा देता, तो लघुकथा पूर्णतया अस्वाभाविक हो जाती और इसे 'गढ़ंत' ही कहा जाता. कभी-कभी जीवन की विसंगतियों से जुड़े 'प्रश्न' हमारे सामने आ खड़े होते हैं, ये सवाल ही वैचारिक मंथन के दौरान 'लिखने' को विवश करते हैं. 'गुमशुदा जिंदगी' का जन्म ऐसे ही कुछ अनुत्तरित सवालों के कारण हुआ है. कक्षा नौ में प्रवेश लेते ही राजू का एडमिशन कोचिंग संस्थान में करा दिया जाता है, ताकि बारहवीं क्लास तक आते-आते वह आई आई टी की प्रवेश परीक्षा के लिए तैयार हो जाए. बेटे को कोचिंग इंस्टीट्यूट में छोड़ने के बाद उसके पिता एक ठेले पर फल लेने के लिए रुक जाते हैं. कुछ देर तक फलों को हाथ में लेकर सूँघते रहते हैं, फिर रेहड़ी वाले से कहते हैं, "कार्बाइड से पके लगते हैं, वरना फरवरी में आम! और ये पपीते भी तो नेचुरल नहीं लग रहे. कार्बाइड से पककर एकदम पिलपिले हो गए हैं. कहीं भी तो हरापन नहीं!"

वहीं फल ले रहा एक अन्य बूढ़ा व्यक्ति उन्हें जवाब देता है, "उस तरफ देखिए. इंस्टिट्यूट जाते, भारी-भरकम स्कूल-बैग के बोझ से झुके इन बच्चों को भी तो समय से पहले ही पकाया जा रहा है. सुबह आठ बजे से शाम के पाँच बजे तक. न खेलने-कूदने का समय, न घर में फुरसत और न ही माँ-बाप के पास इनसे बात करने की फुरसत. बस ट्यूशन लगाकर, कोचिंग सेंटर में भेजकर, लैपटॉप-मोबाइल दिलाकर वे इससे अपनी इतिश्री समझ लेते हैं. तभी तो असमय बूढ़े हो रहे हैं आज के नौजवान."

"समय ही कॉम्पीटिशन का है. सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट! कुछ पाने के लिए कुछ खोना तो पड़ता ही है" राजू के पापा बोले.

"जनाब, इनको तो हर रोज बस जिन्दा रहने के लिए ही कॉम्पीटिशन करना है, ताकि हर रोज इनके घर चूल्हा जल सके. नेचुरल तरीके से पके फल यदि ये बेचने लगें, तब तक तो इनकी भूख इंतजार नहीं कर पाएगी."

यह लघुकथा हमारे सामने जो दृश्य निर्मित करती है, वे बेचैन कर देते हैं. प्रश्न खड़े करती है, जिनका कोई समाधान नहीं दिखाई नहीं देता.

दलित सन्दर्भ पर पूरन सिंह द्वारा लिखित लघुकथा 'वचन' चौथे स्थान पर रही. विषय बहुत पुराना होने के बावजूद सशक्त प्रस्तुति के कारण लघुकथा प्रभावित करती है. सदियों पुराना विषय होते हुए भी लेखक को जब कलम उठानी पड़ती है, तो इसका मतलब साफ है कि तमाम दावों के बावजूद वास्तव में स्थितियाँ जस की तस हैं. लेखक ने मंगुआ की आपबीती के माध्यम से ठाकुर की कथनी और करनी को बेनकाब किया है. ठाकुर मंगुआ का शोषण ही करता है, उसे काल्पनिक स्वर्ग (यूटोपिआ) दिखाकर. साथियों में और समाज में मंगुआ को अपना भाई बताकर गुलाम बनाए रखना, उसकी सोची-समझी नीति है. एक दिन जोश में आकर मंगुआ को कुछ भी माँग लेने का वचन दे देते हैं. उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी कि मंगू उनसे एक दिन के लिए 'मंगुआ' (दलित) बनने की माँग कर देगा. यहीं उनकी असलियत खुल जाती है और उनका असली रूप सामने आकर मंगू पर पिल पड़ता है. लघुकथा अपने उद्देश्य में सफल है, लेकिन ठाकुर द्वारा प्रदत्त काल्पनिक स्वर्ग में पूरी निष्ठा और समर्पण से सेवारत मंगुआ का ठाकुर से एक दिन के लिए मंगुआ बन जाने की माँग रख देना अस्वाभाविक लगता है, हालांकि लेखक ने एक वाक्य से इसे संतुलित करने का प्रयास किया है-- 'मेरे मन में छिपी सदियों की पीड़ा साक्षात होने लगी थी.'

अश्विनी कुमार आलोक की 'नृशंस' पाँचवें स्थान के लिए पुरस्कृत हुई. अपनी विशिष्ट बुनावट के कारण यह लघुकथा रेखांकित करने योग्य है. सामान्य पाठक इसे भ्रष्टाचार विषयक साधारण-सी लघुकथा समझ सकता है, वस्तुतः ऐसा नहीं है. शीर्षक पर गौर करते ही इसके निहितार्थ हमारे सामने खुलने लगते हैं. कथानायक एक शिक्षक से प्रखंड शिक्षा पदाधिकारी के रूप में प्रोन्नत हुआ है. वह पत्नी और बेटे को अपने कार्यालय में घटी घटना से अवगत कराना चाहता है, बेटा उसके किस्से की उपेक्षा करता है और पत्नी भी उसकी बात को सुनने में कोई रुचि नहीं लेती. वह बताता है– आदेशपाल ने किस तरह कार्यालय के गेट पर उनसे रुपयों की माँग कर सबके सामने अपमानित किया, उसकी शिकायत जब उसने बड़े साहब से की तो वे बोले, "तीन ब्लॉक, छह सौ तेरह स्कूल. बहुत अपेक्षा से तुम्हें तीनों का प्रभार दिया है. आदेशपाल की तरह मेरी ओर पचास का नोट न बढ़ा देना. अब तुम शिक्षक नहीं रहे, हाकिम हो गए हो." यानी आदेशपाल की तरह बड़े साहब को भी उससे मोटी रकम चाहिए.

कथानायक को नहीं पता कि उसकी पत्नी ने कुछ सुना भी कि नहीं, प्रतिक्रिया स्वरूप वह बिना कुछ बोले भीतर चली जाती है और बेटा पिच्च-से वाशबेसिन में थूकते हुए अंदर चला जाता है.

यह ईमानदारी के कारण घर और दफ्तर– दोनों मोर्चों पर अपमानित होते व्यक्ति की व्यथा-कथा है. वर्तमान संदर्भों में पत्नी और बेटे की जो अपेक्षाएँ घर के मुखिया से हैं, ईमानदारी के चलते उन्हें पूरी होते न देख वे अपने व्यवहार में उसके विरुद्ध क्रूरता की सभी हदें पार कर जाते हैं.

प्रदीप कुमार 'धवल' की 'इंटरव्यू' भी सदियों से चले आ रहे जातिगत भेदभाव पर करारा व्यंग्य है, बेरोजगार ड्राइवर, जो पूर्व में लाश ढोने वाली गाड़ी (स्वर्ग विमान) चलाता था, को जब नगर निगम की कूड़ा-गाड़ी चलाने की नौकरी का मौका मिलता है तो वह भड़क जाता है, "माफ किहेव साहेब, बाभन होइके आपसे ई उम्मीद नहीं रही, मेहतर समझेव है का?" संवाद गढ़े गये हैं, पर सध गये हैं. लघुकथा अपनी रोचकता और प्रभावी अंत के कारण आम पाठकों को पसंद आएगी.

सातवाँ पुरस्कार संध्या तिवारी की 'इस प्यार को क्या नाम दूँ' को प्राप्त हुआ है. लेखिका की लघुकथा पहली बार पुरस्कृत हुई है, जबकि उनकी लघुकथाएँ पुरस्कार हेतु विचारार्थ चयनित लघुकथाओं के अंतिम चक्र में कई बार पहुँची हैं. संध्या तिवारी लघुकथा में नए-नए प्रयोग के लिए भी जानी जाती हैं, लेकिन यहाँ उन्होंने कथ्य को सीधे-सरल एकरेखीय वृतांत के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, जो विषय के अनुकूल है. टीवी सीरियल्स को लेकर हम सबकी यही राय है कि ये वास्तविकता से परे हैं, न जाने कौन-सी दुनिया की बात करते हैं, जहाँ सास-बहू के बीच चालबाजियाँ हैं, नाजायज संबंधों में उलझी युवतियाँ हैं, अधिकतर पात्र साजिशों में लिप्त दिखाये जाते हैं. देखने की बात यह है कि इन तमाम आरोपों के बावजूद घर-घर में इन्हें देखा जाता है, किसी वजह से इसमें रुकावट आ जाए, तो सब बेचैन हो उठते हैं. इसी विषय से लेखिका ने कथ्य उठाया है, जो सचेत करता है कि इस तरह के सीरियल्स की घरों में घुसपैठ ने परिवारों को उनका व्यसनी बना दिया है, उन्हें पता ही नहीं चलता कि कब सीरियल्स में दिखाई जा रही चालबाजियों, ओछी हरकतों के 'वायरस' ने उन्हें भी अपनी गिरफ्त में ले लिया है.

सुधा थपलियाल की लघुकथा 'नेम प्लेट' का विषय बहुत पुराना है, इस पर अलग-अलग विधाओं में निरंतर लिखा जा रहा है, लघुकथा का अंतिम भाग 'गढ़ंत' का शिकार है, लेकिन लेखिका गढ़ंत को साधने में सफल रही हैं, ऐसी सांप्रदायिक सद्भाव बढ़ाने वाली रचनाओं की जरूरत भी है. लघुकथा में एक बहुत बड़े सच को केंद्र में रखकर लेखिका ने लघुकथा की रचना की है, इसी वजह से 'गढ़ंत' बहुत अस्वाभाविक नहीं लगता . दंगाइयों से अपने पड़ोसी मित्र के घर को बचाने के लिए हमीद हिन्दू मित्र की नेम प्लेट हटाकर अपने नाम की प्लेट उसके घर पर लगा देता है. दंगे शांत हो जाने पर हिन्दू मित्र की घर वापसी पर उसकी नेम प्लेट सहित सुरक्षित घर उसे लौटा देता है. यह रचना इस बात की तसदीक करती है कि दंगाइयों का कोई मजहब नहीं होता, एक ही मोहल्ले में रहने वाले विभिन्न मजहब के लोग आपस में कभी नहीं लड़े, उनको सदैव बाहर से आने वाले अनजान दंगाइयों ने ही क्षति पहुँचायी.

दिव्या शर्मा की लघुकथा 'इन्टॉलरेंस' विषय की नवीनता के कारण निर्णायकों का ध्यान खींचने में सफल रही. फेसबुक पर 'इन्टॉलरेंस का शिकार होती महिलाएँ' विषयक लेख पर बहस चल रही है, दृष्टि उस बहस में शामिल है. ऐसे में कूड़े वाले के आने से चिड़चिड़ा उठती है, "ये कमीना भी उसी वक्त आता है, जब इंसान जरूरी काम कर रहा हो." बाहर आकर देखती है कि तीन मकान छोड़कर वह सबके कूड़े में से कूड़ा छाँट रहा है. वह तमतमाकर चिल्लाती है, "अब आकर ले जा, कब तक हाथ में लिये खड़ी रहूँगी!" कूड़ेवाला दो मिनट रुकने को कहता है.

लघुकथा में दर्शाये गये वार्तालाप से स्पष्ट है कि 'इन्टॉलरेंस' की बहस में अभिजात वर्ग के लोग शामिल हैं, जो अपने वैचारिक एजेंडे को स्थापित करने के लिए बिना सोचे-समझे कमेंट करते हैं. दृष्टि के दिमाग का पारा चढ़ता जाता है. वह कूड़े वाले पर फिर चिल्लाती है.

फेसबुक पर चल रही बहस के बीच वह कूड़ेवाले की गाड़ी में कूड़ा उलटकर लौटने लगती है -यहीं लेखिका ने एक दृश्य प्रस्तुत किया है, जो पूरी लघुकथा को मायने देता है, वह कूड़ेवाले की गाड़ी में कुछ देखकर ठिठक जाती है– वहाँ पड़े मोहल्ले भर के कूड़े को उसने अपने हाथों से अलग-अलग किया हुआ था, जिनमे शामिल थे खून से सने सेनिटरी पैड्स ..डायपर्स ...और न जाने क्या-क्या. यह देखकर वह खुद पर शर्म महसूस करने लगती है और सोच में पड़ जाती है कि समाज में इन्टॉलरेंस के असली शिकार कौन हैं?

जयमाला की 'डाकू' में अस्पतालों में मरीजों से हो रही मनमानी लूट का चित्रण है, दो घटनाओं के माध्यम से इसे रचा गया है-अस्पताल में कैश काउंटर पर मरीज के घर वाले साइन करने से इनकार करते हुए उनपर लाखों रुपये वसूलने का आरोप लगा रहे हैं. वहीं पास वाली कुर्सी पर दादी अपने पोते के साथ बैठी हैं, उनका बेटा बहू को इमरजेंसी वार्ड में भर्ती कराने में व्यस्त है, बच्चा अपनी माँ के पास जाने की जिद करता है, तो दादी उसे गब्बर डाकू की कहानी सुनाती है. अंत में बच्चा पूछता है, "फिर क्या हुआ दादी माँ? गब्बर मर गया?"

"नहीं बेटा, गब्बर कहाँ मरते हैं. वे तो बस भेष बदल लेते हैं." कैश काउंटर पर मरीज के घरवालों की आपबीती से प्रभावित बेबस दादी जवाब देती है. लेखिका ने अस्पतालों में मरीजों के शोषण पर दादी पोते के संवाद से चोट की है, जिससे लघुकथा अपना प्रभाव छोड़ने में सफल रही है.

और अंत में

लेख के प्रारम्भ में प्रतियोगिता हेतु प्राप्त लघुकथाओं में उस 'गढ़ंत' की बिंदुवार चर्चा की गयी है, जिसके कारण रचना इतनी क्षणिक या अल्पजीवी हो जाती है कि पाठक को बिलकुल प्रभावित नहीं करती. पुरस्कृत लघुकथाओं के अध्ययन से भी यही निष्कर्ष निकला कि अधिकतर रचनाएँ इस 'गढ़ंत' से मुक्त हैं, जिन रचनाओं में लेखक ने आंशिक रूप से 'गढ़ंत' का सहारा लिया भी हैं, उसे वह साधने में सफल रहा है. इस प्रकार 'रचने' ओर 'गढ़ने' के अंतर को समझा जा सकता है.

लघुकथा 'रचने' को लेकर रमेश बतरा कहते हैं– "'रचने' का अर्थ मेरे तईं बिलकुल असैंबलिंग जैसा है, यानी घड़ी के पुर्जे मेरे इर्द-गिर्द गिरा दिये गये हैं और अब यह मुझ पर आधारित है कि मैं उन्हें जोड़-जोड़कर कैसी और किस प्रकार की घड़ी तैयार करता हूँ. इस तरह यह मेरे लिए एक सतत खोज है, जो मुझे कुछ सिखाती-समझाती है और मैं उस सीख को समझ को रचना के माध्यम से सबके साथ साझा करने की कोशिश करता रहता हूँ." रमेश बतरा की टिप्पणी से भी स्पष्ट है कि लेखक के आस-पास बिखरी सामग्री (लेखन के लिए कच्चा माल) को लेखक भीतर सतत खोज, सीख और समझ (सर्जन प्रक्रिया) की जरूरत होती है. केवल फेब्रिकेशन(गढ़ंत) से किसी दीर्घजीवी रचना का जन्म संभव नहीं. यहाँ इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत है उनकी एक लघुकथा–

रमेश बतरा

खोया हुआ आदमी

वह अपनी धुन में मस्त चला जा रहा था. सहसा सड़क के बीचोबीच भीड़ को देखकर, यह जानने की उत्सुकता होते हुए भी कि वहाँ क्या हो रहा है, वह उसे नजरअंदाज करके निकल गया.

"भाई साहब... भाई साहब..." वह अभी कोई दस-बारह कदम ही आगे गया था कि भीड़ में से एक आदमी उसे पुकारने लगा.

"क्या है?" पीछे घूमकर उसने वहीं से पूछा.

"इधर आइए, यहाँ आपके मित्र की हत्या हो गयी है."

वह परेशान-सा वापस लौट पड़ा... और याद करने लगा कि उसे पुकारने वाला आदमी कौन है, जो उसे और उसके मित्र दोनों को जानता है. दिमाग पर काफी जोर देने के बाद भी वह केवल यही तय कर पाया कि वह उसका परिचित तो है, लेकिन यह याद नहीं आ रहा कि वह कौन है और उसकी उससे पहली, पिछली या कोई भेंट कब और किस सिलसिले में हुई थी.

भयभीत-सा वह भीड़ के पास पहुँचा तो भीड़ ने उसके लिए रास्ता छोड़ दिया. वह कुछ कदम दूर से ही सामने पड़े शव को देखने लगा और मिनट-भर बाद उसे पहचानकर हँस पड़ा, "यह तो मेरा शत्रु है."

"जरा ध्यान से देखिए."

"शत्रु ही है!"

"शत्रु कौन?"

"कौन हो सकता है!" वह दुविधा में पड़ गया... फिर मेरा तो कोई शत्रु नहीं!

"आप जरा गौर से पहचानिए."

इस बार वह शव के नजदीक चला गया और उसे घूरते-घूरते हैरान रह गया... यह तो वही आदमी था, जिसने पुकारा था.

उसने भीड़ में चारों ओर देखा, वह आदमी कहीं नहीं था. वह घबरा गया और घबराहट में ऐनक उतारकर फिर से शव पर झुक गया.

"पहचाना?" किसी ने पूछा.

"हूँ," वह बड़बड़ाया, "पहचान लिया."

"कौन है?" ▣

मो. : 9634258583